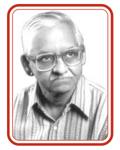

(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ

M.Sc., Ph.D.

वर्ष-25 | सितम्बर-2015 | अंक-9

ध्यान शिविर में आप सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

दि० 12, 13 व 14 सितम्बर, 2015 (शनिवार, रविवार, सोमवार)

पंजाबी धर्मशाला, राजगुरु मार्केट (आर्य बाजार), हिसार

यथार्थ में जीएं

अध्यात्म के मार्ग पर चलने से पहले, इसे जान लेना जरूरी है। अध्यात्म का सीधा सम्बन्ध; व्यक्ति के अन्त: जगत, आत्मा व शुद्ध चेतना से है। अध्यात्म; प्राप्त करने के लिए, आत्मबोध का मार्ग अपनाना जरूरी है।

व्यक्ति को हमेशा यथार्थ में जीने की कोशिश करनी चाहिए। जीवन का असली आनन्द भी यथार्थ में ही छिपा होता है।

मनुष्य को जान लेना चाहिए कि; अध्यात्म के मार्ग पर चलने से उसके मन रूपी आत्मा का शुद्धिकरण हो जाता है। व्यर्थ के किए जाने वाले दिखावे से दूर रहकर जीवन को सदैव सार्थक बनाएं।

(साध्वी मीही भारती)

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

पंजीकरण संख्या : 280/2013

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

Facebook : dhyansatsangsabha@gmail.com

'ध्यान' है विधि, समाधि है उपलब्धि

'ध्यान': सचेतन निद्रा है।
जागते हुए सोना, सोते हुए जागना।
आकार में निराकार, निराकार में आकार।
'ध्यान' मन की मृत्यु है।
वहां तुम (अहं) मर जाते हो।
तुम सब परमात्मा पर छोड़ देते हो।
वहां तुम मिट जाते हो,
एक खाली जगह रह जाती है।
वहां कुछ भी नहीं रह जाता है,
उस खाली हृदय में आता है प्रियतम।
उस रिक्त मंदिर में ही, प्यारा आता है।
जब तक वहां तुम हो, तब तक वह न आ सकेगा।
क्यों? - खाली नहीं है उसके लिए जगह।
भरे हो तुम, उस स्थान में।
तुम नहीं होओगे, तो वह आ जाएगा।
विवाह हो चुका है, शून्य से।
'ध्यान' है विधि, समाधि है उपलब्धी।
जब चेतना 'विषय' से ही बाहर हो जाती है,
तभी 'स्व:' को जाना जा सकता है।
यही भगवद् भक्ति है, यही आत्मसमर्पण है,
यही आत्म उत्थान है और यही प्रभु मिलन है।

ध्यान क्या है?

✍ श्री सुरेन्द्र कुमार (94166-71105)

क्या मन को बुद्धि की गुलामी से छुड़ाने का नाम ध्यान है; या पूर्ण-रूपेण समर्पण का नाम ध्यान है; या फिर जहां गहन अधंकार जन्म-जन्मांतरों से समाया हुआ पड़ा

है; वहां रोशनी की किरण पहुंचाने का नाम ध्यान है? खतरनाक जंगली जानवर गहन जंगल के गहन अंधकार में आश्रय लेते हैं, क्योंकि उन्हें प्रकाश की किरणों से डर लगता है। जैसे ही हम ध्यान में बैठते हैं। विषय विकार रूपी जंगली जानवर बाहर निकलने के लिए छटपटाने लगते हैं और हमें ध्यान के पांच-दस मिनट पश्चात ही इतनी बेचैनी होती है कि हम ध्यान से उठ जाते हैं।

कितने खुद गर्ज है हम? हमने जो शरीर रूपी कमरा बीस या तीस वर्ष से नहीं, बल्कि जन्म जन्मांतरों से अहंकार रूपी ताला लगाया हुआ था। चारों तरफ गंदगी जमी हुई पड़ी है और हम चाहते हैं कि यह बीस या तीस मिनट में साफ हो जाए। शरीर रूपी कमरे में ध्यान रूपी झाड़ू हमें रोज कम से कम दिन में तीन बार आधा आधा घंटा लगानी होगी। अन्दर विषय-विकार रूपी धूल भी उठेगी और हमारा दम भी घुटेगा।

मन जो आज तक हमारे ऊपर राज करता आया है,

कहेगा : चल कमरे से बाहर चल। मजा तो बाहर आएगा।

क्योंकि मन ने आज तक बाहरी मजा लिया है। असली आनन्द तो अन्तरमुखता में है। बहिरमुखता में तो खोखलापन है। आंख खोलकर जागने का नाम जाग्रत अवस्था नहीं है। बल्कि जागते हुए आंख बन्द करके बैठने का नाम ही जागृत अवस्था है। रात को आंख बन्द करके सोने का नाम निद्रा नहीं है। बल्कि खुली आंखों से बहिरमुखी जगत में विचरण करने का नाम (धक्के खाना) ही निद्रा है।

हमारी ध्यान की प्रक्रिया चलती रहे। रुकने ना पाए। कुछ वर्ष बीत जाने के पश्चात लगातार अभ्यास द्वारा एक ऐसी अवस्था आ जाती है; जब दर्पण रूपी अन्तःकरण की बिल्कुल सफाई हो जाती है। हमें दर्पण को ध्यान के द्वारा कम से कम इस लायक तो बनाना ही होगा कि हमें अपना चेहरा साफ साफ दिखाई दे सके। शरीर रूपी स्नान को बेशक एक दो दिन भूल जाएं, लेकिन आन्तरिक स्नान, (आत्मिक स्नान या आन्तरिक सफाई) को हम जन्म-जन्मान्तरों तक भूल न पाएं। ऐसी कृपा करना मेरे गुरुवर, हमारे ऊपर। ब्रह्मज्ञान रूपी प्रसाद तो जीता-जागता ब्रह्मज्ञानी गुरु ही दे सकता है।

ध्यान द्वारा मछली रूपी मन को इस कद्र तो करना ही होगा कि वह तालाब

की गहराई में बैठ सके। क्योंकि मछली (रूपी मन) जब ऊपर की तरफ उठती है तो वह ऐसे जीवों को भी खा जाती है जो जल को शुद्ध करने का कार्य करते हैं।

मन मन्दिर में ग़ाफ़िला, झाड़ू रोज़ लगाया कर

बैठ अकेला दो घड़ीः ईश्वर को तू ध्याया कर। टेक।
मन मन्दिर में ग़ाफ़िला, झाड़ू रोज़ लगाया कर ॥1॥

सोने में तूने रात गुजारीः दिन भर करता पाप रहा,
इसी तरह बर्बाद तू बन्दे, करता अपना आप रहा।
तैयार होकर, ध्यान सत्संग मेंः नित तू जाया कर॥2॥

बार-बार मानुष तन पानाः बच्चों का कोई खेल नहीं,
जन्म-जन्म के शुभ कर्मों का, जब तक होता मेल नहीं।
नर तन पाने के लिए, उत्तम कर्म कमाया कर॥3॥

पास तेरे जो दुखिया कोईः तूने मौज उड़ाई क्या,
भूखा प्यासा पड़ा पड़ौसी, तूने रोटी खाई क्या?
पहले सबसे पूछकर, फिर तू भोजन किया कर॥4॥

देख दया उस परमेश्वर कीः जिसने उत्तम जन्म दिया,
सोच जरा तू मन में प्राणी, कितना है उपकार किया?
प्रातः उठकर हे प्राणी! उसका शुक्र मनाया कर॥5॥

सहज ध्यान (Meditation)

—श्री राकेश गर्ग (098967-89678)

यह मान्यता बहुत दिनों से चली आ रही है कि ईश्वर के ध्यान से हर मनुष्य के अन्दर ईश्वरीय शक्ति का जागरण हो जाता है; और ईश्वरीय शक्ति वह शक्ति है, जिसके द्वारा कुछ भी पाना असम्भव नहीं है। कुछ दिनों से केवल यह हुआ है कि समाज में ईश्वर के ध्यान की इतनी प्रयास-भरी विधियां प्रचलित हो गई हैं, कि आज का साधारण मनुष्य ध्यान के नाम से विचलित हो गया है।

ध्यान की विधि आसान है।

किसी एकान्त, शान्त स्थान में बैठ जाएं, फर्श पर दरी, कम्बल, आसन या चटाई आदि कुछ भी बिछा लें। आंखें बन्द कर लें, मन में एक बार भगवान का नाम लें और फिर मन को छुट्टा (Relax) छोड़ देना है। ऐसा करते ही, मन विचारों में चला जाएगा। जो भी विचार आते हैं–आने दें, कोई विरोध ना करें। धीरे धीरे मन विचारों के क्षेत्र को छोड़कर आत्मा के क्षेत्र, जो कि विचारों से परे है; में चला जाएगा, जो कि शान्त है। मन का आत्मा के क्षेत्र में प्रवेश करना ही, आत्मा (भगवान) का ध्यान है। आत्मा, आनन्द का स्थान है। मन आनन्द चाहता है, इसलिए मन जल्द ही वहां पहुंच जाएगा। कोई प्रयास नहीं करना है। ये अपने आप होता है। अगर मन में ऊब लगने लगे तो फिर एक बार भगवान का नाम लेकर, मन को छुट्टा (Relax) छोड़ देना है। मन फिर दुबारा अर्न्तमुखी हो जाएगा।

नियमित ध्यान करने से ईश्वरीय शक्ति अनमोल रत्न के रुप में प्रकट होती है। हमारी ईश्वरीय शक्ति का समुद्र अन्दर की दुनिया में है। अनमोल रत्न हमेशा उसे ही प्राप्त होता है, जो समुद्र में गहरा गोता लगाना जानता हो।

सब कुछ देता ब्रह्म है, सब का दाता राम।
लेने की विधि ध्यान है, मिले परम विश्राम॥

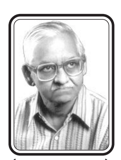

(1936-2009)

मन ही जीव है।

(Mind is Life)

✍ डॉ० शम्भूनाथ

''मन ही जीव है''। जीव के पास भ्रमण करने के लिए दो संसार हैं : शरीर के अन्दर और शरीर के बाहर। मन का भ्रमण, शरीर के अन्दर; ध्यान है। मात्र इन्द्रियजगत और बुद्धिजगत से मन के हटने से, मन का भ्रमण; शरीर और बुद्धि के संसार से परे क्षेत्र में हो जाता है।

ध्यान किया नहीं जाता, हो जाता है।

मन कागज है; मन का भ्रमण कर्म है। कर्म दो प्रकार के हैं; शरीर के बाहर और शरीर के अन्दर। शरीर के बाहर का कर्म 'लेखनी' है। शरीर के अन्दर का कर्म,

जिसे हम ध्यान कहते हैं; बाहर के कर्मों द्वारा मन पर लिखे हुये, को मिटाने वाला 'रबड़' (Eraser) है, जिससे मन फिर कोरा बन सके।

जीवन दो शक्तियों से बना है : 'करनी और होनी'।

करनी के समय, बुद्धि और इन्द्रियां कार्यरत हो जाती हैं; जिससे मन एक प्रकार का कैसेट बन जाता है।

'होनी' के समय शरीर के बाहर का क्षेत्र, एक प्रकार का पर्दा है। उस पर्दे पर होनी के समय अन्दर के कैसेट में जो होता है, वही बाहर आ जाता है और दिखाई पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'करनी' और 'होनी' द्वारा हमारा जीवन कैसे बनता है?

जीव के लिए इन्द्रियजगत का जीवन सुखदायी है या दुखदायी है?

ध्यान के कर्मों द्वारा मन पर अंकित दुखदायी भाग मिट जाते हैं; और सुखदायी भाग में बढ़ोत्तरी हो जाती है। ध्यान करने के लिए जब हम एकान्त ढूंढ़ते हैं, तो कान के कर्मों से मन को छुटकारा मिल जाता है। अंधेरे में आंख बन्द करने से, आंखों के कर्मों से छुटकारा मिल जाता है। सुविधाजनक आसन में कुचालक (बैड कण्डक्टर ऑफ इलैक्टरिसिटी) पर बैठने से, Earth होने के प्रभाव से छुटकारा मिल जाता है। बैठ जाने से, बाकी सभी इन्द्रियों के कर्मों के बन्धन से जीव मुक्त हो जाता है। एक बार मन में ईश्वर के किसी नाम को स्मरण करके मन को स्वतन्त्र (Relax) छोड़ने से, वो इन्द्रियों और बुद्धि दोनों के बन्धन से स्वतन्त्र हो जाता है और आन्तरिक क्षेत्र में मन भ्रमण करने लगता है। यही 'ध्यान' है।

ध्यान उस समय करना चाहिये, जब शरीर में कम से कम थकावट हो। अत: प्रात:काल के समय, उठने के पश्चात आधे घंटे के अन्तर्काल में, एकान्त और अंधेरे में; लगभग आधे से एक घण्टे तक के समय के लिये बैठ जाना और होनी पर समर्पित हो जाना, जीवन को सुखी बनाने में मदद करेगा। ध्यान द्वारा व्यक्ति का आत्मज्ञान बढ़ता है और वो जीवन में सुख के क्षेत्र का ज्ञानी हो जाता है।

संसार में केवल परमात्मा पूर्ण

संसार में केवल परमात्मा है। जो है; वही अनुभव में आता है; और उसी को सत् कहते हैं। जो अनुभव में नहीं आता; वो केवल कल्पना (माना हुआ) है। अर्थात् केवल बुद्धि की उपज है।

परमात्मा पूर्ण है। परमात्मा प्रकट होने की शक्ति है।

पूर्ण होने के कारण वो केवल अनन्त, अपूर्णों में प्रकट हो सकता है। ये अपूर्ण, समाज में तीन अवस्थाओं में पाए जाते हैं; निर्जीव वस्तुएं, वनस्पति जगत और जीव। समय बीतने के साथ साथ परमात्मा के संरक्षण में जीव का विकास हुआ; और समय आने पर उसने मनुष्य का रूप धारण किया।

मनुष्य के जीवात्मा की अवस्था ऐसी है कि वो सूक्ष्म और स्थूल कर्म करने योग्य है; और कर्मों के आधार पर आगे का विकास करता है।

सन्त तुलसीदास के अनुसार, जीव परमात्मा का पुत्र है। अर्थात् परमात्मा पिता है। हर पिता की इच्छा होती है कि उसका बेटा उससे कम ना हो। जीव भावातीत (Transdental) होकर, अपने में परमात्मा की शक्ति पिरोकर; अपने को परमात्मा-स्वरूप बना सकता है।

यही जीवन का लक्ष्य है।

अपने में परमात्मा की शक्ति पिरोना ही; जीव के उत्थान का रास्ता है। कर्म करके जीव का उत्थान करते जाना, जीवन का उद्देश्य है।

इन्द्रियजगत आत्मज्ञान का विद्यालय है। पृथ्वी पर रहकर, जीव अपने को आत्मज्ञान की विद्या से पूर्ण कर सकता है। इसलिए सारे अपूर्ण जीव, जो इस विद्या से पूर्ण हो सकते हैं; इन्द्रियजगत में जन्म लेते हैं।

जीव अनन्त प्रकार के हैं; और इनका विकास परमात्मा के संरक्षण में होता है। ज्यों-ज्यों जीव का विकास होता है; जीव का शरीर बदलता है।

यह सब प्रकृति द्वारा होता है। विकास होते-होते जीव, मनुष्य का शरीर धारण कर

लेता है। पूरी सृष्टि में केवल मनुष्य, अपने में भावातीत-क्षेत्र (Trancendental Field) की शक्ति पिरोने के कर्म के माध्यम से, अपने को ईश्वरीय-शक्ति से तरबतर करके; ईश्वर-स्वरूप बन सकता है।

आत्मज्ञान का रास्ता यह है कि; मनुष्य कुछ समय निकालकर एकान्त में, अंधेरे में, आंखे बन्द करके, किसी कुचालक (बैड कन्डकटर) पर, सुविधाजनक आसन में बैठकर, एक बार ईश्वर के किसी नाम को स्मरण करके, मन को स्वतन्त्र (Relax) छोड़ दे।

ऐसा करने से मन, भावों का क्षेत्र छोड़ देता है; और भावातीत-क्षेत्र में स्नान करके, भावों के क्षेत्र में वापिस आ जाता है और फिर अपने में भावातीत-क्षेत्र की शक्ति पिरोकर, क्रियाओं के क्षेत्र में आए; और क्रिया के क्षेत्र में स्थूल कर्म करे।

इस पूरी प्रक्रिया को गीता (2.48) में श्रीकृष्ण भगवान ने, तीन शब्दों में : 'योगस्थ कुरु कर्माणि' द्वारा दर्शाया है। इस कर्म द्वारा साधक इन्द्रियजगत में ब्रह्म की शक्ति पिरोता है। ज्यों-ज्यों साधक के वातावरण में, जितनी ब्रह्म की शक्ति पिरोती जाएगी; त्यों-त्यों समय बीतने के साथ-साथ साधक का जीवन अधिक सुखमय होता जाएगा। इस सिद्धान्त के आधार पर जो साधक अपने जीवन को जितना सुखमय बनाना चाहे; बना सकता है।

प्रयासहीनता का अभ्यास

(Practice of Meditation)

अग्नि ज्यादातर वस्तुओं को जलाकर राख कर देती है, लेकिन सोना अग्नि में तप करके निखरता है।

कुछ समय के लिए कोई वस्तु किसी के सम्पर्क में रहे और तप कर निखरे; यही तपस्या का अर्थ है।

प्रकृति ने हर मनुष्य को मन, बुद्धि और शरीर प्रदान किया है। जो भी अपने मन को तपाकर निखारने में सफल होगा, उसका मन; जीवन के दुखों से दूर हो जाएगा। जो अपनी बुद्धि को तपाकर निखारने में सफल हो जाएगा, वह जीवन की

सारी परेशानियों से मुक्त हो जाएगा और जो अपने स्नायु संस्थान (Nervous System) को तपाकर निखारने में सफल हो जाएगा। वह समस्त शारीरिक रोगों से मुक्त हो जाएगा।

दुःख रहित मन, परेशानी रहित बुद्धि और रोग रहित शरीर; जीवन की अमूल्य निधि हैं।

जिस तरह से सोना आग के सम्पर्क में तपकर निखरता है; बिल्कुल उसी प्रकार से मन, मात्र ब्रह्मसुख में तप कर निखरता है। प्रयासहीनता (Meditation) के समय पराजगत की शक्ति मन में पिरोती है; और तब ब्रह्मसुख की उत्पत्ति मन में होती है। इस तरह से मन ब्रह्म सुख के सम्पर्क में आता है; और साधक अपने मन में ब्रह्म-सुख उभार कर क्रियाओं के क्षेत्र में क्रिया हेतु वापस आता है। इसी को गीता (2.48) में योग में स्थित होकर कर्म करना कहा है। ज्यों-ज्यों साधक का अभ्यास बढ़ता है, ब्रह्म सुख का उभरना बढ़ता रहता है।

एक निरन्तर अभ्यास द्वारा, वह हर समय ब्रह्मसुख में लीन रहने लगता है।

ज्यों-ज्यों ब्रह्मसुख की तीव्रता बढ़ती है; मन और अधिक निखर कर क्रियाओं में आता है; और क्रिया जगत को दिव्य शक्तियां प्राप्त होती हैं।

ये दिव्य शक्तियां जीवन की क्रियाओं को संवारती हैं, जिससे जीवन भी संवरता है।

हमारे मन की बनावट ऐसी है कि; जब वह प्रयासहीन होता है, मन बेलगाम विचारों मे आचरण करना प्रारम्भ कर देता है। विचरण करते-करते, वह फिर बुद्धि के लगाम में आ जाता है (दूसरे शब्दों में मन, बुद्धि से जुड़ जाता है)। प्रयासहीनता के अभ्यास के समय, ऐसा बार-बार होता है। इस अभ्यास के रास्ते पर तपा हुआ मन, बुद्धि के सम्पर्क में आता है; और बुद्धि को भी तपा कर निखारना शुरु कर देता है।

पराजगत की शक्ति, पराजगत का प्रकाश है; और जब यह मन में पिरोता है, तब मन प्रकाशित (Enlightened) होता है। मन का आनन्द ही मन का प्रकाश है।

दूसरे शब्दों में मन में दुःख ही मन का अंधेरा है। इस तरह यह देखना कितना आसान है कि

मात्र मन में ब्रह्मसुख की कमी ही; सारे दुःखों का कारण है।

लेकिन सारा जगत तो दुःख का कारण बाह्य जगत की क्रियाओं में समझता है। यह समझ; उसकी बिना तपी हुई बुद्धि की देन है। फलस्वरूप, वह अपने जीवन के दुःखों से छुटकारा पाने के लिए अन्दर का प्रकाश बढ़ाने की बजाय, इन्द्रिय जगत की क्रियाएं बढ़ाना शुरू कर देता है; या क्रियाओं में गलतियां निकालने का प्रयास करता है। इस तरह से वह बड़े मायावी दलदल में फंसता चला जाता है।

जो साधक; प्रयासहीनता (Meditation) के अभ्यास से जुड़ते ही चले जाते हैं; उनका मन तप कर बुद्धि से जुड़ता है; और बुद्धि को तपाता है। धीरे-धीरे बुद्धि में दिव्य-जगत का प्रकाश लाता है। दूसरे शब्दों में दिव्य जगत का ज्ञान आता है।

मात्र इस प्रकाश की कमी ही; जीवन की परेशानियां का कारण है। परन्तु मायावी दलदल (Ignorance) में फंसा हुआ व्यक्ति अपनी परेशानियां को इन्द्रिय जगत की वस्तुओं की कमी से जोड़ता है; और उन क्रियाओं में ज्यादा व्यस्त होने लगता है, जो उन वस्तुओं को उनके जीवन में ला सके।

ऐसा बहुधा देखा जाता है; जीवन में वस्तुओं की कमी तो मिट जाती है, लेकिन परेशानी नहीं जाती।

लेखक वस्तुओं की कमी पूरा करने को मना नहीं करता। बल्कि जोर इस बात पर देता है कि; क्रियाओं की दुनियां में, योग में स्थित होकर ही आना है।

ब्रह्म-सुख की कमी में इन्द्रिय सुख, दुखदायी हैं। ब्रह्म-सुख के साथ, इन्द्रिय सुख दुःख देने की क्षमता खो देता है। यह ज्ञान, मात्र दिव्य शक्ति द्वारा प्रकाशित बुद्धि में है; दूसरे शब्दों में मात्र तपी हुई बुद्धि में है।

हमारे आन्तरिक जगत में कुछ पूर्जे हैं; जो हमारे ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का संचालन करते हैं, या यह कहें कि इस शरीर का संचालन करते हैं। इन

पुर्जों का अनुभव ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से असम्भव है। यही यह प्रमाणित करता है कि; ये पुर्जे तो पराजगत में हैं। इसलिए मात्र पराजगत की शक्ति इन पुर्जों के पूर्ण रख-रखाव में सक्षम है।

लेकिन यह ज्ञान तो मात्र तपी हुई बुद्धि में है।

अप्रकाशित बुद्धि इन पुर्जों का रख-रखाव, इन्द्रिय जगत की शक्तियों के माध्यम से करने लगती है- उदाहरण के लिए औषधियों, प्राकृतिक चिकित्सा, संतुलित आहार, उपवास या आसन। प्रयासहीनता के बाद मन; बुद्धि और स्नायु संस्थान से एक साथ जुड़ता है और दोनों को एक साथ तपाता है। ज्यों-ज्यों स्नायु संस्थान तपता है, शरीर के समस्त पुर्जों को; और फिर पूरे शरीर को पराजगत की शक्ति मिलने लगती है। ऐसा उसी प्रक्रिया द्वारा होता है, जिस प्रक्रिया द्वारा जमीन; खाद, पानी की शक्तियां जड़ में पिरोने के बाद समूचे पेड़ को मिलने लगती हैं।

प्रयासहीनता का अभ्यास इस तरह से हमें अखण्ड स्वास्थ्य देने में सक्षम है।

बाहर के जगत में इसका चिह्न यह है कि; शारीरिक दर्द या तकलीफ, उम्र बीतने के साथ-साथ कम होने लगें; भले ही कुछ रोग के चिह्न आड़े आयें। उम्र बढ़ने के साथ मात्र शारीरिक तकलीफ का कम होना ही; अखण्ड स्वास्थ्य का चिह्न है।

ब्रह्मसुख की अनुभूति ही; अखण्ड आनन्द है।

प्रकाशित बुद्धि में जीवन के सुखों से सम्बन्धित ज्ञान ही अखण्ड ज्ञान है। हमने देखा कि; अखण्ड स्वास्थ्य, अखण्ड आनन्द औरअखण्ड ज्ञान देने वाली तो; वह दिव्य शक्तियां हैं, जो मन में पिरोने के पश्चात् ब्रह्मसुख या अखण्ड आनन्द की उत्पत्ति करती हैं। जब मनुष्य उपरोक्त तपस्या द्वारा; मन, बुद्धि और शरीर को तपाकर अखण्ड शक्ति, अखण्ड ज्ञान, अखण्ड आनन्द और अखण्ड स्वास्थ्य के साथ, समाज के दूसरे प्राणियों के सम्पर्क में आता है तो; उसके व्यावहारिक जीवन में बदलाव का आना स्वाभाविक होगा। यह बदलाव; व्यक्तियों और वस्तुओं से चिपकन कम होने के रूप में प्रतीत होता है। यही अखण्ड प्रेम है।

इस तरह से हम देखते है कि मात्र प्रयासहीनता का अभ्यास (Meditation); हमारे मन, बुद्धि और शरीर को तपाकर; हमारे जीवन में अखण्ड शक्ति, अखण्ड ज्ञान, अखण्ड आनन्द, अखण्ड प्रेम और अखण्ड स्वास्थ्य प्रदान करने में सक्षम है।

ऊपर यह बताया गया है कि; प्रकृति ने हर मनुष्य को मन, बुद्धि और शरीर प्रदान किया है। इससे सम्बन्धित तीन तरह की शक्तियां हर मनुष्य के पास हैं- आत्मशक्ति, बौद्धिक शक्ति और शारीरिक शक्ति। अत: तपस्या इन तीनों शक्तियों द्वारा सम्भव है। ऊपर हमने देखा कि प्रयासहीनता के अभ्यास द्वारा; आत्म-सत्ता उभरती है; और अभ्यास करने वाला, आत्म-सत्ता के माध्यम से अपने जीवन को तपाता है।

आत्म सत्ता; तीनों शक्तियों में सर्वश्रेष्ठ शक्ति है।

इसलिए यह जीवन को तपाकर सर्वश्रेष्ठ निखार ला सकती है। बुद्धि और शारीरिक शक्तियों के माध्यम से; हजारों और तपस्याएं भी की जा सकती हैं। लेकिन बुद्धि और शारीरिक शक्ति के माध्यम से; मनुष्य एक समय में, जीवन के केवल किसी एक पहलू को ही संवार सकता है। फलस्वरूप किसी एक पहलू का सुख आ जाता है; लेकिन सम्पूर्ण जीवन का सुख नहीं आता। उदाहरण के लिए मनुष्य, किसी एक विषय के ज्ञान में बहुत ही उच्च स्तर को प्राप्त हो जाता है; दूसरे शब्दों में उस विषय का ज्ञाता हो सकता है। लेकिन जीवन-ज्ञान; विषयों के ज्ञान से भिन्न होता है।

किसी एक विषय का ज्ञाता होने से जीवन सुखी नहीं होता।

कुछ शारीरिक तपस्याओं के माध्यम से; जैसे उपवास से, हम जीवन के मात्र एक पहलू में कुछ निखार ला सकते हैं। लेकिन उतना निखार नहीं ला सकते जितना; आत्म-सत्ता की मदद से ला सकते हैं। कारण यह है कि; आत्मसत्ता शारीरिक शक्ति की तुलना में बहुत उच्चकोटि की शक्ति है। उपवास द्वारा शारीरिक पतन की गति हमेशा ही कम कर सकते हैं; लेकिन पतन रुक जाए और उत्थान शुरु हो जाय; ऐसा केवल आत्मसत्ता द्वारा ही संभव है।

कहते है महर्षि बाल्मीकि की आयु एक हजार वर्ष से ज्यादा थी।

आज के कलियुग में भी कुछ दिन पहले दवराहा बाबा ने शरीर छोड़ा और उनकी आयु भी उस समय कम से कम 800 वर्ष की थी।

ऐसी संभावनाएं मात्र आत्म-सत्ता द्वारा संभव हैं। शंकराचार्य परमहंस और शिरडी के सांईबाबा; इस बात के लिए प्रसिद्ध हैं कि, उनकी जीवात्माएं उनके शरीर को कई दिनों के लिए छोड़ देती थीं और फिर उसी शरीर में दोबारा प्रवेश करने में सक्षम थीं। जब वे ऐसा करते थे; उनका शरीर पहले से अच्छा हो जाता था।

अब हम दूसरी साधना; सेवा से सम्बन्धित चर्चा करेंगे। जीवन में कई तरह की सेवाओं की संभावनाएं रहती हैं। आज इस कलियुग में भी कम से कम, सभी के माता-पिता इस बात को जानते हैं कि; केवल कुछ दिनों पहले एक कुटुम्ब अर्थात् एक पिता के सारे बच्चे और उनका परिवार साथ-साथ रहते थे। ऐसे सभी परिवारों में छोटा; बड़े की सेवा करे, ऐसी परम्परा थी। धीरे-धीरे कलियुग बढ़ा; और सबका परिवार अलग-अलग रहना सीख गया। फिर भी ऐसे बहुत से व्यक्ति मिलते हैं, जिन्होंने अपने मां-बाप की काफी सेवा की। समाज में कुछ धार्मिक मनुष्य मिलते हैं; जो धार्मिक गतिविधियों के माध्यम से अपने-अपने धर्मों की सेवा करते हैं। हिन्दुस्तान एक गुलाम देश था। इसलिए न मालूम; कितने लोगों ने इसे आजाद कराने हेतु, अपना जीवन देश की सेवा में बलिदान कर दिया। लेकिन ये उदाहरण तो उन सेवाओं के हैं; जो मनुष्य ने इन्द्रिय जगत की शक्तियों के माध्यम से; कहने का अर्थ है कि शारीरिक, बुद्धि और पैसे की शक्ति के माध्यम से की। जिसने जितनी छोटी या बड़ी सेवा की; उसे उसी के अनुपात में कोई छोटा या बड़ा फल अवश्य मिला।

> **लेकिन मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति तो; उसकी आत्म-शक्ति है। अब हम यह देखेंगे कि आत्मसत्ता द्वारा कोई सेवा संभव है; या नहीं? और यदि है तो; वह किस स्तर की, कैसी और किसकी सेवा है?**

इन्द्रिय जगत की रचना से सम्बन्धित; सिद्धान्तों (Theory of Evolution) में विकास का सिद्धान्त सबसे ज्यादा, प्रसिद्ध है। यह सिद्धान्त कहता है कि; यह सृष्टि एक दिन में नहीं बनी। शिव पुराण की कथाओं के अनुसार एक समय था; जब शिवजी, ब्रह्मा, विष्णु, ब्रह्मा के पुत्र नारद, कामदेव, राजा, दक्ष, पृथ्वी, वायु, अग्नि और नक्षत्र थे।

लेकिन संध्या नहीं थी; अर्थात् दिन और रात नहीं थे।

संध्या कैसे शुरू हुई? इससे सम्बन्धित कहानी शिवपुराण में मिलती है। यह इन्द्रिय जगत के विकास के सिद्धान्त की पुष्टि करता है। स्वयं ब्रह्म; आठ बार अलग-अलग रूप में अवतार में आए - मीन, कच्छप, बाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम और कृष्ण। ये अवतार भी विकास के सिद्धान्त की ही पुष्टि करते हैं। ये हमें बताते हैं कि; इन्द्रिय जगत में प्राणियों का विकास भी धीरे-धीरे हुआ। ब्रह्म; इस सृष्टि की सबसे बड़ी संतुलन शक्ति है। संतुलन जब भी बिगड़ने को हुआ, ब्रह्म; बिना किसी जन्म के अलग-अलग रूपों में प्रकट होता रहा है। जब, जिस रूप में प्रकट हुआ; उस समय, वही प्राणियों का सबसे ज्यादा विकसित रूप रहा। राम और कृष्ण; दोनों ही मनुष्य के रूप में थे। फिर भी अवस्थायें भिन्न-भिन्न थीं। कृष्ण के द्वारा कुछ अधिक ही शक्ति प्रकट हुयी। इस बात की भी पुष्टि होती है कि; प्रलय की संभावनाएं जब-जब आयीं, तब-तब; ब्रह्म ने इन रूपों को धारण करके उसे रोका।

कृष्ण के बाद अभी तक कोई अवतार नहीं हुआ। स्वयं कृष्ण ने महाभारत के समय, अर्जुन को गीता का उपदेश दिया। इस गीता के उपदेश (सात सौ श्लोक) द्वारा सारे वेदों और पुराणों का निचोड़; समाज को प्रस्तुत किया। दूसरे शब्दों में समाज को; वह दर्शन दर्शाया, जिसके माध्यम से कोई भी मनुष्य किसी भी युग में अपनी समस्त समस्याओं को दूर करने में सक्षम हो सकता है।

गीता के अध्याय-2 में श्लोक नं० 45 द्वारा, अर्जुन को तीनों गुणों से परे जाने का अभ्यास (दूसरे शब्दों में प्रयासहीनता के अभ्यास) की सलाह दी।

इसी अध्याय, के श्लोक नं० 48 द्वारा बताया कि; वह योग में स्थित अर्थात्; ब्रह्मसुख में लीन होकर इन्द्रिय जगत में कर्म करने में निपुण हो जाएगा।

अध्याय 3 के श्लोक 10, 11 और 12 में इसे एक यज्ञ बताते हुए कहा कि; इस यज्ञ के माध्यम से मनुष्य इन्द्रिय जगत के देवताओं की उन्नति करने में सक्षम होगा। जो ऐसा करेगा; उसे देवतागण उनके प्रिय भोगों को बिना मांगे देंगे।

अध्याय 4 के श्लोक नं० 33 में ऐसे यज्ञों को; अर्थात् जिसमें किसी वस्तु और क्रिया की आवश्यकता न हो-ज्ञान यज्ञ कहा गया।

ऊपर हमने देखा कि स्वयं ब्रह्म; जब द्वापर में अवतार के रूप में कृष्ण बनकर पृथ्वी पर आए, उन्होंने हमें गीता द्वारा दर्शाया कि;

मनुष्य आत्मसत्ता के माध्यम से (प्रयासहीनता के अभ्यास द्वारा); दूसरे शब्दों में ज्ञानयज्ञ के माध्यम से, समस्त देवताओं की सेवा करने में सक्षम है।

देवता तो वह है जो हर उस मनुष्य को, जो उसकी सेवा में रत है; उनके प्रिय भोगों को बिना मांगे देने में सक्षम है। लेकिन प्रश्न उठता है कि, हर मनुष्य के प्रिय भोगों को देने की शक्ति; वह कहां से प्राप्त करता है? हर साधकगण बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि; व्यक्तिगत और सामूहिक ज्ञान-यज्ञों के माध्यम से मनुष्य; सत् को पराजगत से इन्द्रिय जगत में प्रवाहित करने में सक्षम है। प्रकृति में इस सत् का फैलाव इन देवताओं की सेवा है।

देवता देते तो मनुष्यों को हैं, लेकिन लेते प्रकृति के सत् से हैं।

यही देवताओं की परिभाषा है। सत् ब्रह्म की शक्ति है; और ब्रह्म समस्त देवताओं का देव है। इसलिए समझना कितना आसान है कि; देवता देता मनुष्य को है, लेकिन लेता केवल ब्रह्म से है। ब्रह्म; पराजगत की दिव्य शक्ति और इन्द्रिय जगत के देवताओं में यह रिश्ता, स्वयं ब्रह्म की इच्छा से; ब्रह्मा द्वारा स्थापित किया गया है।

इसलिए यह समझना कितना आसान है कि; प्रयासहीनता (Meditation) के अभ्यास द्वारा तो मनुष्य; सर्वोच्च स्तर की परमेश्वर की सेवा कर सकता है।

कृष्ण ने गीता के अध्याय 3 में तो केवल यह कहा है कि; जब मनुष्य ज्ञान-यज्ञ के माध्यम से देवताओं की उन्नति करते हुए, अपनी उन्नति करेगा-तब निश्चय ही वे मनुष्य को, उसके प्रिय भोगों को बिना मांगे देंगे। लेकिन लेखक यह कहना चाहता है कि; जो साधक पचासों साल तक ब्रह्म में लीन होकर कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म करके; परमेश्वर की सर्वोच्च सेवा करने में सफल होगा, उसे स्वयं परमेश्वर सब कुछ देने के लिए बाध्य हो जाएगा।

ऊपर हमने छोटी-छोटी बुद्धि और शारीरिक सेवाओं की बात की; और इसके बाद यह भी देखा कि आत्मसत्ता के माध्यम से की गई सेवाओं का स्तर; क्या होगा?

अब पाठकगण स्वयं अलग-अलग स्तरों की सेवा द्वारा; मिले हुए फल के विषय में अनुमान लगा लेंगे।

सुमिरन का शाब्दिक अर्थ है ईश्वर की याद। बहुत मशहूर कहावत है -

दु:ख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, दु:ख काहे को होय॥

उपरोक्त कहावत की पहली पंक्ति हमें बताती है कि; मनुष्य को दु:ख के समय ईश्वर अपने-आप याद आ जाता है। यहां पर दु:ख शब्द, उस दु:ख के लिए इस्तेमाल हुआ है; जिसे हटाने में मनुष्य अपने को सक्षम नहीं समझता। तभी ईश्वर की याद अपने-आप आ जाती है। सत्य यह है कि; ऐसी स्मृतियां मात्र प्रार्थनाएं होती हैं। लेखक के साथ सम्पर्क बनाए रहने वाले साधक अच्छी तरह जानते हैं कि; हमारी प्रार्थनाएं हमारे संकल्प हैं। संचित आत्मसत्ता का व्यय; अपने दु:खों को मिटाने के लिए, करने का साधन है।

आत्मसत्ता; संचित करने का साधन नहीं है।

इस तरह से हम देखते हैं कि उपरोक्त तपस्या और सेवा के माध्यम से तो हम; अपने मन में आत्मसत्ता का संचय करते हैं। लेकिन सुमिरन की साधना द्वारा केवल; इस आन्तरिक संचित धन के व्यय की कला को सीखते हैं। धीरे-धीरे इस कला में निपुण होते हैं। बाहर के जगत में भी हम जानते हैं कि; जिसके पास इन्द्रिय जगत का अपार धन है, वह सोच-समझकर नहीं खर्च करता। बिल्कुल इसी तरह से जिसने हमेशा साधना की है, (दूसरे शब्दों में अपने सुखी जीवन में भी ब्रह्म सुख से उभारने का महत्व दूसरी हर क्रिया की उपेक्षा ज्यादा समझा है या यह कहें कि आन्तरिक धन कमाने में कभी पीछे नहीं रहा है); उसके जीवन में तो दु:ख आने से पहले ही, दु:ख हटाने के लिए आन्तरिक धन अपने आप व्यय हो जाता है। उसे आन्तरिक धन व्यय करने की कला सीखने की आवश्यकता ही नहीं होती। यही ब्रह्मी चेतना (Union state of consciousness) है। इस अवस्था में वह अपनी दिव्य-शक्ति को पदार्थों में तत्काल परिणित करने में सक्षम है; और इसीलिए उपरोक्त दोहे की दूसरी पंक्ति कहती है-

'जो सुख में सुमिरन करे, दुख काहे को होय।'

समर्पण, ध्यान और समाधि

—डॉ० बलदेव राज नाशा

समर्पण : एकान्त में, अंधेरे में, आंखें बन्द करके चुपचाप बैठ जाएं। अपने को प्रभु के सहारे छोड़ देना है। जो होता है, होने देना है। इसे समर्पण कहते हैं।

ध्यान : इसके बाद कोई विचार अच्छे या बुरे आवें, आने दें। उन्हें रोकना नहीं। विचार न आवे तो लाने नहीं, इसे ध्यान कहते हैं।

समाधि **:** थोड़ी देर बाद हम ईश्वरीय क्षेत्र में चले जाते हैं। इसे समाधि कहते हैं। समाधि से सब समस्याओं का समाधान अपने आप हो जाता है। सब इच्छाओं की पूर्ति होकर इच्छा निवृत्ति हो जाती है।

जाहि न चाहिए कबहुं कछु, तुम सन सहज स्नेह।
बसहु निरन्तर तासु उर, सो राऊर निज गेह॥

प्रजापति ब्रह्म कुमारी वाले हमें ईश्वर का अंश नहीं; वंशज मानते हैं। वंश परम्परा के अनुसार; ईश्वर की सम्पति के हम अपने आप ही अधिकारी जब हैं-जब हम ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं। अन्यथा वह नालायक बेटे को बेदखल करने की शक्ति भी रखता है।

ईश्वर अथवा अपना साक्षात्कार हो जाने से; संसार का सब कुछ ही आपका हो जाता है। क्योंकि सारा संसार ही ईश्वर का बनाया हुआ है।

सवेरे शाम आधा आधा घंटा एकान्त में आंखें बन्द करके, भगवान का नाम सोचकर चुपचाप बैठना है।

रात को छः घंटे विश्राम करना, ध्यान ही है। क्योंकि उस समय बुद्धि और शरीर का काम रुक जाता है। मैं और मेरा नहीं रहता।

ध्यान का अभ्यास करने वाले को किसी भी पुराने साधक से सीख कर ध्यान शुरू कर देना चाहिए। अपना अभ्यास करते हुए अपने आगे की साधना

की बातचीत पुराने साधकों से करते रहना चाहिए। साधना में ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेंगे, त्यों-त्यों अपने आप बड़े-बड़े साधकों का सत्संग मिलता जाएगा।

ध्यान के समय कमरे में धूप-अगरबत्ती आदि नहीं जलाने चाहिएं। इनकी सुगन्ध से नाक काम करने लगती है। ध्यान करने में बाधा पड़ती है। मुंह में पान, टॉफी-गोली आदि रखकर भी नहीं बैठना है। मुंह-हाथ धोकर बैठ सकते हैं। मन करता हो, तो एक कप चाय पीकर या बिस्कुट खाकर भी बैठ सकते हैं।

अपने पर ध्यान के लिए कोई विशेष बन्धन नहीं रखना है।

ध्यान तो बन्धनों से छूटने के लिए होता है। ध्यान साधना से काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि स्वयं छूट जाते हैं। प्रभु कृपा से स्वभाव, सात्विक होता है। मनुष्य के सब काम, कमाई व रहन-सहन आदि में सुधार होने लगता है। सब प्रकार की बुरी आदतें समाप्त होकर; सुख-शांति, संतोष, संपन्नता और स्मृद्धि प्राप्त होती है। अन्दर से आनन्द और बाहर से सुख मिलता है। ईश्वर हर समय है और हर स्थान पर है। हर दिशा में है। इसलिए सहज ध्यान किसी भी समय, किसी भी दिशा में और कोई भी मनुष्य बड़ी सरलता से कर सकता है।

ध्यान द्वारा गहरा विश्राम करके प्रभु कृपा से सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

ध्यान के समय मन को आजाद (Relax) छोड़ देना है। भगवान का अंश होने के कारण, मन अपने अंशी भगवान के पास शीघ्र ही चला जाता है। शरीर को ढीला छोड़कर, एक बार बड़े आराम से सीधे बैठ जाना है। कोई विशेष पोज बनाना या कसकर, अकड़कर, नहीं बैठना है। शरीर स्वयं ही; अपनी जरूरत के हिसाब से अपनी स्थिति (पोज) बदल लेगा।

ध्यान के समय सब कुछ सहज और स्वाभाविक होने देना है।

यात्रा करते समय बस या गाड़ी में ध्यान बहुत बढ़िया लगता है। टिकट लेकर जब निश्चिन्त होकर सीट पर बैठ जाते हैं, तो 3-4 घंटे सफर में ध्यान लग जाता है। यह समय बड़े आनन्द से निकल जाता है। मोटर, गाड़ी की हलचल से भी कोई तकलीफ नहीं होती। कई बार किसी एक ही घटना या बात का विचार स्वयं होता

रहता है और कई योजनाएं भी बनती रहती हैं। वे हमारे लिए कल्याणकारी होती हैं। ध्यान के लिए बैठे हुए अनेक समस्याओं और कष्टों को दूर करने के उपाय अन्दर से स्वयं मिल जाते हैं। ध्यान द्वारा आत्म-सुख, आत्म-धन, आनन्द और ईश्वर कृपा मन में भर जाते हैं। बाहर का संसार भी स्वर्ग बन जाता है। हमारे सारे काम अपने आप होने लगते हैं। परिश्रम कम; और प्राप्ति अधिक होती है। जरूरतें, इच्छाएं तथा लालसा कम होती हैं। जीवन आनन्द, मौज और मस्ती से भर जाता है। सबसे प्रेम, प्यार और मेल मिलाप होने लग जाता है। अपने में अधिक सुख भर जाने के कारण यह सुख दूसरों को भी मिलने लगता है। हमारे चारों ओर का वातावरण, सुखमय हो जाता है। ध्यान का अभ्यास (Meditation) इतना सरल है कि; संसार के हर वर्ग और स्तर का व्यक्ति, इसे बिना प्रयास के कर सकता है।

बहुत सरल यह साधना, साध सके तो साध।
प्रभु सम्मुख कर मेट दे, कोटि-जन्म अपराध॥

जो कर-कर के ना पा सका। वह न करके पा लिया।
जो श्रम से न पा सका; वह विश्राम से पा लिया॥

ध्यान द्वारा दुःख मिट जाते हैं

—श्रीमती ऊषा गर्ग (09991846415)

जरा अनुभव तो करके देख, क्या बदलाव आता है?
दुख मिट जाते है; और सुख ही सुख रह जाता है॥

अनुभव करने की चीज है, बताने की नहीं। फिर भी कभी मुझे पूछा जाता है कि अपना अनुभव तो बताओ; आपको ध्यान की दुनियां में आने के बाद कैसा लगता है? माईक के आगे बहुत ज्यादा नहीं बता पाती। अब लिख के बता रही हूं। सच में जीने का मजा आने लगा है। मन करता है कुछ अच्छा; और अच्छा कर पाऊं। दुनिया में आई हूं; अपना जीवन सफल बना जाऊं। भगवान् की कृपा मेरे ऊपर रही और मेरे भाई, जो बहुत कुछ पाए हुए हैं; उनका साथ बना रहा; तो मेरा अनुभव भी बताने लायक हो जाएगा। मेरी जिन्दगी में शायद -मैं भी नहीं जानती; पूर्ण

संस्कार मैं कैसे कैसे लेकर आई? दुनियां भर के अवगुण मेरे अन्दर , एक आध बिमारी मेरे अन्दर; और ना जाने क्या क्या?

परन्तु भगवान् ने मुझ पर ध्यान की वर्षा रूपी बरसात करके,
सब बुरा मिटाकर- अच्छा करने का फैसला बना लिया है।

मैं बहुत खुश हूं; इस भगवान् की कृपा से। यह अनुभव मेरे लिए किसी वरदान से कम नहीं है। अभी जो फायदे मुझे हुए हैं कि; मुझे ऐसा लगता है, सब मुझे प्यार करने लगे हैं। प्यार में इज्जत, मान और न जाने क्या क्या आ जाता है? परन्तु मेरी तरफ से, अभी मैं अधूरी हूं; क्योंकि मैं अभी वो सब नहीं कर पाती- जो मुझे मिलता है।

देखो आगे क्या होने वाला है?

यह ध्यान का रास्ता जो है; वो है क्या ? और इससे क्या होता है? बड़ा सरल है - ध्यान करने से हमारे अन्दर जो भगवान् की शक्ति भरी है और जिस पर हमने माया की धूल जमा दी; उसको साफ करके, उस शक्ति का प्रगट होना है। यह ध्यान का काम है। इसके अभ्यास से क्या हो सकता है? इसके फायदे क्या हैं? जो लोग बहुत सालों से कर रहे हैं, उनको ध्यान के गुणों का पता है;

वे चाहते हैं कि हमारी तरह सभी को इनके गुणों का पता चले;
वे इसका लाभ उठाएं और उनकी भी लाईफ बदल जाए।

बहुत पहले कुछ साधु सन्त होते थे, जो पहाड़ों पर ध्यान का अभ्यास करते थे। उनसे कुछ जिज्ञासु जीवन जीने की कला पूछने जाते थे। उनका मानना था कि चुप रहने से आध्यात्मिक उन्नति होती है। परन्तु आज पहाड़ों पर जाकर पूछना नहीं पड़ता। सन्त आ आ कर बताते हैं कि इससे जिन्दगी के हर पहलू का परिवर्तन होता है; चाहे वह शारीरिक, मानसिक या आर्थिक हो? विचारधारा Positive हो जाती है।

जीवन की दिशा ही बदल जाती है।

अब बताएं ध्यान करना कैसे है? जैसे सोने के लिए लेटते है; वैसे ध्यान के लिए बैठना है। करना कुछ नहीं। आंखे बन्द करके एक बार राम का नाम मन के अन्दर

सोच लेना है और 30 मिनट चुप बैठना है। शुरु में तो इतना; फिर बढ़ाते रहना है और दिन में सुविधा अनुसार तीन बार बैठना है। जैसे भी आपको बैठने में आराम मिले, उसी मुद्रा में बैठना है। ध्यान करना नहीं; अपने आप होगा। 40 दिन करो और अपने जीवन में परिवर्तन अनुभव करो। मानने या न मानने की बात ही नहीं। अनुभव करने की बात है।

कर्म से चेतना की उत्पत्ति

—प्रस्तुति : श्री सत नारायण शर्मा (094161-64702)

जब बच्चा पैदा होता है, तब उसके पास केवल मन और शरीर है। बच्चा पूर्ण रूप से बुद्धिहीन है। इसलिए नवजात शिशु का मुंह, उसकी मां दूध तक ले जाती है। **मात्र दूध पीने के कर्म से उस चेतना की जागृति होती है, जिस चेतना में यह ज्ञान है कि; दूध किस क्षेत्र में है?** धीरे धीरे वह स्वयं अपने मुंह को दूध तक ले जाने लगता है और मां को कुछ नहीं करना पड़ता।

> **कर्म से चेतना की उत्पत्ति है और चेतना में ज्ञान है। जिस क्षेत्र में कर्म है, उस क्षेत्र का ज्ञान हो जाता है।**

हमने देखा कि ज्ञान अर्थात् बुद्धि; कर्म की देन है। अधिकतर मनुष्य यही मानते हैं कि बुद्धि तो ईश्वर की देन है। शून्य बुद्धि में इन्द्रियजगत का कोई जीवन नहीं है। ज्यों-ज्यों इन्द्रिय जगत के अलग अलग क्षेत्रों में मन और इन्द्रियों द्वारा कर्म होता है, त्यों त्यों अलग अलग क्षेत्र की बुद्धि अर्थात् ज्ञान की उत्पत्ति होती है। यह इन्द्रियजगत के जीवन को चलाने में सहायक है। प्रकृति ने तो केवल शरीर और मन दिया है।

> **कर्म करने वाला मात्र मन है और मन का विचरण ही कर्म है। अत: मन में उठते हुए विचार, इस बात का प्रमाण हैं कि कर्म हो रहा है।**

इस तरह से हम देखते हैं कि इन्द्रियजगत में जीवन का आरम्भ कर्म से है। अलग अलग बच्चे अपने जीवन के कर्म अलग अलग दिशाओं में करके, अलग अलग दिशाओं के क्षेत्रों की चेतना जागृत कर लेते हैं। इन अलग-अलग चेतनाओं में उपजा हुआ ज्ञान, अलग-अलग बच्चों को हो जाता है। प्रकृति ने इन्द्रियजगत में

ऐसा प्रावधान बनाया कि अनन्त मनुष्यों में कोई दो, एक तरह न मिले। हमारे जीवन की अनुभूति है कि

> **लगभग सभी की बुद्धि ने मन को गुलाम बना रखा है। समाज में मात्र कुछ महात्माओं का जीवन ऐसा है कि उनकी बुद्धि के सहारे उनका मन नहीं चलता। ऐसे महात्मा अपनी चाहत के अनुसार अपना जीवन जी लेते हैं। ऐसे महात्माओं के जीवन में दुख प्रवेश नहीं करते। आज का समाज तो ऐसे मनुष्यों से बना है, जिनका मन उनकी बुद्धि का गुलाम है।**

सन्त तुलसीदास अनुसार :

> **पराधीन सपनेहु सुख नाहिं। कर विचार देखहु मन माहीं॥**

पराधीन मनुष्यों से बना समाज केवल दु:ख की ओर अग्रसर होगा। कई प्रतिष्ठित ज्ञानी और साधकों का अपनी विपदाओं के विषय में यह प्रश्न है कि; आखिर हमारे साथ ही ऐसा क्यों होता है?

> **आध्यात्मिक दृष्टि से समाज में दो तरह की शक्तियां है; ईश्वरीय राम की शक्ति (सुखदाई शक्ति);**
>
> **और रावण की शक्ति (दुखदाई शक्ति)।**

यदि जीवन का विश्लेषण करें तो जीवन, मात्र दो तरह की शक्तियों द्वारा चलता है।

(1) आन्तरिक शक्तियां ईश्वर की शक्तियां, जिनका आभाष हर मनुष्या 'होनी' के रूप में कर सकता है। होनी का अर्थ है, जो बिना किए हो जाए। जिन कर्मों के विषय में इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलता कि; ये कर्म किसने किए? वे सारे कर्म, 'होनी' के अन्तर्गत स्वयं होते हैं।

(2) दूसरे वे कर्म हैं जो मन, बुद्धि के आदेशानुसार ही करता है। ऐसे कर्म ही मन को बुद्धि के अधीन बनाते हैं। प्राधीन सपनेहुं सुख नाहिं। ये ही जीवन के सारे दुखों का कारण हैं।

> **इन्द्रियजगत की बुद्धि या इन्द्रिय जगत का ज्ञान ही रावण है।**

यही लेखक का उत्तर उन साधकों को है, जिनके मन में यह प्रश्न उठता है कि, आखिर मुझे भगवान इतना दु:खी क्यों कर रहा है? और उत्तर उनको स्वयं नहीं मिलता। दु:ख का कारण समझने के पश्चात् दु:ख हटाने का रास्ता; मन को बुद्धि की गुलामी से आजाद करना है। इस रास्ते को एक नाम दिया गया है-ध्यान। बुद्धि की शक्ति से लड़ने की शक्ति; मात्र होनी में है। 'होनी', परमात्मा की शक्ति है।

ध्यान के कर्म द्वारा; मन में असीम की शक्तियां

सूर्य की शक्तियां: उजाला और गर्मी हैं। सूर्य जहां भी होगा वहां उजाला तथा गर्मी अवश्य होंगे। बिल्कुल इसी तरह; 'होनी' की शक्ति परमात्मा की शक्ति होने के कारण परमात्मा, होनी (ध्यान) के क्षेत्र में अवश्य मिलेगा। ध्यान के रास्ते पर यदि विचार करें तो लेखक ने यही सिखाया है कि; एकान्त में, अंधेरे में, आंख बन्द करके, किसी कुचालक सुविधाजनक आसन पर बैठकर, ईश्वर के नाम को एक बार याद करके, मन को स्वतन्त्र (Relax) कर दें। इस तरह दिन में कम से कम दो बार आधे आधे घण्टे के लिए बैठें। जब मन को हम स्वतन्त्र छोड़ेंगे, उस समय मन में स्वत: उठते हुए विचार, इस बात के प्रमाण हैं कि; मन द्वारा ऐसे क्षेत्र में कर्म हो रहा है, जो क्षेत्र बन्धन मुक्त है - अर्थात् असीम है। मात्र असीम क्षेत्र में, असीम को शक्ति है।

कर्म के माध्यम से, मन अपने में 'असीम' की शक्तियां पिरोएगा।

यह मन की शक्ति बढ़ाने की कला है। ज्यों ज्यों मन बलवान होगा और जिस समय मन ध्यान में नहीं भी होगा, उस समय भी वह 'बुद्धि की आधीनता' स्वीकार नहीं करेगा। अपनी चाहत के अनुसार जीवन बिताने लगेगा। ज्यों ज्यों ऐसा होगा, त्यों त्यों जीवन के दुख कम होंगे और सुख बढ़ेंगे। एक दिन आएगा, जब वह जीवन के समस्त बंधनों से मुक्त हो जाएगा।

ध्यान; मन का व्यायाम

ध्यान उस रास्ते का नाम है, जिस रास्ते का अभ्यास मन को करना है; शरीर के किसी अंग को नहीं करना। इस तरह से यह मन का व्यायाम है। इस व्यायाम द्वारा मन अपने को बलवान बनाते बनाते सर्वशक्तिशाली बन जाता है।

यद्यपि ब्रह्म (भावातीत क्षेत्र) एक है, परन्तु हर जीव को कभी न कभी, ब्रह्मस्वरूप होना है। जब तक वह ब्रह्मस्वरूप नहीं होता, तब तक उसके जीवन के काम समय पर ही होते हैं। परन्तु ब्रह्मस्वरूप होते ही उसके कार्य तत्काल होने लगते हैं।

ब्रह्म का अस्तित्व; उसके 'स्वयं' से है। परन्तु जीव की उत्पत्ति के लिए, जड़ मन में ब्रह्म को पिरोना होता है। ध्यान सीखने वाले अच्छी तरह जानते हैं कि; इन्द्रियजगत 'करनी' का क्षेत्र है। परन्तु पराजगत और परा से पराजगत अर्थात् ब्रह्म का क्षेत्र; दोनों ही 'होनी' का क्षेत्र हैं।

अत: करनी और पराजगत की सीमारेखा तक पहुंचने के लिए, मन कुछ करता है। परन्तु सीमा रेखा से पराजगत में प्रवेश करने के लिए, मन को अपने आप पराजगत में खिंच जाना है।

करना कुछ भी नहीं है। खिंचते-खिंचते जब तक मन भावातीत नहीं हो जाता; खिंचना रुकता नहीं। भावातीत (Transcendental) होने पर जिस मन की जैसी चेतना होती है, उतनी शक्ति लेकर मन पराजगत में वापिस आ जाता है। फिर इन्द्रियजगत में अर्थात् अपने 'मैं' के संसार में वापिस आ जाता है। इस तरह से हम देखते हैं कि मन; इन्द्रियजगत से भावातीत, भावातीत से पराजगत और पराजगत से इन्द्रियजगत के चक्र में भ्रमण करता है।

मन का यह भ्रमण वह 'यज्ञ' है, जिस यज्ञ के माध्यम से वह अपने में 'ब्रह्म की शक्ति' को पिरोता है।

जब मन ब्रह्मतत्व के सागर में नहाकर पराजगत में विचरण करता है तो; कुछ ब्रह्मतत्व इन्द्रिय जगत की शक्तियों (अर्थात् देवताओं) को प्राप्त हो जाता है। लाखों या करोड़ो बार ब्रह्मतत्व के सागर में स्नान करने से मन; ब्रह्मतत्व से तरबतर हो जाता है, जिससे मन की शक्ति ब्रह्म की शक्ति के समान ही होती है; और जीव ब्रह्मस्वरूप कहलाने लगता है। इस तरह साधकगण, लेखक द्वारा दर्शाए इस सत्य को अनुभव कर सकते हैं कि; ब्रह्म तो एक है-परन्तु ब्रह्मस्वरूप तो हर मनुष्य का होना है।

बुद्धि; इन्द्रियजगत की देन

बुद्धि इन्द्रियजगत के कर्मों की देन है; यह आंखों से नहीं दिखती। हम इन्द्रियजगत के ज्ञान को; यदि स्मरणशक्ति के सहारे बनाए रखने का प्रयास न करें तो उत्पन्न ज्ञान लुप्त हो जाता है। इसके लिए बराबर ज्ञान के क्षेत्र में कर्म करना पड़ता है। एक विद्यार्थी; जो बी.ए. उत्तीर्ण करके उसी विद्यालय में शिक्षक बन जाता है, बच्चों को पढ़ाने हेतु अपने ज्ञान के क्षेत्र में कर्म करते रहने से, वह अपने ज्ञान को स्मरणक्षेत्र में बनाए रखने में सफल हो जाता है। जो परीक्षा उत्तीर्ण करके किसी ऐसे क्षेत्र में व्यस्त हो जाते हैं; जहां अर्जित ज्ञान सम्बन्धित कर्म नहीं होते तो, ज्ञान भी लुप्त हो जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि; इन्द्रियजगत के विषयों का ज्ञान या बुद्धि, मात्र इन्द्रियजगत के कर्मों की देन है; परमात्मा की देन नहीं है।

बुद्धि कर्म की देन हो या परमात्मा की; जीवन में अपना मूल्य रखती है। जीवन मात्र दो शक्तियों से चलता है

(1) आत्मा की शक्ति (2) बुद्धि की शक्ति।

(1) आत्मा की शक्ति का साक्षात्कार होनी के क्षेत्र के कर्मों द्वारा, कोई भी साधक कर सकता है। हम देखते हैं; होनी द्वारा कुछ भी हो सकता है। कुछ भी होने के लिए; इन्द्रियजगत में कर्म, प्रत्यक्ष अनुभव होते हैं।

इन स्थूलजगत के कर्मों की दिशाओं को ज्ञान, होनी के क्षेत्र के ज्ञान से मिलता है। इस तरह हर मनुष्य अनुभव करता है कि; होनी के क्षेत्र में सृष्टि का पूर्ण ज्ञान है। यही अखंड ज्ञान है।

पूर्णज्ञान ही परमात्मा है और यह संसार की सबसे बड़ी शक्ति है। लेकिन

(2) उस जीवन के पास पूर्ण ज्ञान नहीं है; जो अपने में ब्रह्मतत्व पिरोकर, ब्रह्म की शक्ति से अपने को तरबतर करने में सफल नहीं हो पाया है। ऐसी जीवात्माएं दो प्रकार की जीवात्माओं में विभाजित हो जाती हैं।

(1) जो ब्रह्मस्वरूप न होते हुए अपने में इतनी शक्ति पिरोने में सफल हो जाती हैं कि वे बुद्धि की गुलामी से मुक्त हो जाती हैं।

ऐसी जीवात्माएं समाज में महान आत्माओं (महात्माओं) के नाम से जानी जाती हैं।

(2) दूसरी वे जीवात्माएं जो अपनी बुद्धि की अधीनता से अपने को साधना द्वारा मुक्त कराने के लिए सफल नहीं होती। ऐसी ही जीवात्माएं आज के समाज के साधारण मनुष्यों की जीवात्माएं हैं।

अपने घर जैसा सुख किसी को कहीं प्राप्त नहीं है। भले ही सुख साधन, अधिक हों।

मन आन्तरिक जगत का निवासी है।

मन का धर तो पराजगत में है; फिर इन्द्रियजगत में उसे वह सुख कैसे मिल सकता है–जो उसे सन्तुष्टि प्रदान कर सके ?

कुछ आध्यात्मिक व्यक्तियों ने इन्द्रियजगत को मेला बताया; और कहा है कि मन तो वहां मेला देखने गया; और लौटने का रास्ता ही भूल गया। आज के समाज के साधारण मनुष्य के मन की अवस्था ऐसे व्यक्ति के मन से की जाती है; जैसे मेले में किसी बच्चे के खो जाने के कारण, बच्चे के मन की अवस्था होती है। बच्चा माता-पिता से अलग हो जाता है; और अपने घर जाने का रास्ता नहीं जानता- इसी प्रकार से आज के समाज का साधारण मनुष्य है। संत तुलसीदास द्वारा निम्न दर्शन –

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।

यह ऐसे ही है, जैसे वह अपने पिता को भूल गया; और पराजगत का रास्ता भी भूल गया है। अत: वह दुखी है। इसका अर्थ यह निकला कि; जिस समाज में पराजगत के क्षेत्र में मन को विचरण करने की विद्या लुप्त हो जाएगी–उस समाज के मनुष्यों के मन की अवस्था ऐसी ही होगी, जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है।

प्रकृति ने रास्ता याद कराने के लिए मनुष्य का जीवन तीन चेतनाओं में बांट दिया है :- निद्रा, स्वप्न और इन्द्रियजगत की जागृति। निद्रा की अवस्था में जिसका मन गहरी निद्रा को प्राप्त कर लेता है; निद्रा के पश्चात उसे एक विशेष संतुष्टि प्राप्त हो जाती है। जागृत अवस्था में इस संतुष्टि की प्राप्ति असंभव है।

नित्य मनुष्य निद्रा को प्राप्त कर लेता है, लेकिन चेतना की कमी में यह ज्ञान नहीं हो पाता कि;

> **यदि वह जागृत अवस्था में भी सोना (Meditation) सीख ले तो कदाचित वह इससे भी बड़ी संतुष्टि को प्राप्त हो जाएगा।**

समय बदलता है और होनी की शक्ति किसी ऐसे मनुष्य को समाज में भेज देती है- जो ऐसे दुखी मनुष्य को रास्ता दिखाकर पराजगत में मन के विचरण; 'ध्यान' की शिक्षा समाज में लाएं। ❑

निर्गुण की महत्ता

—प्रस्तुति : श्रीमती अनु जैन, भिवानी

सत्व, रज और तम; इन तीनों गुणों से परे निराकार ब्रह्म, निर्गुण कहा जाता है। निर्गुण ब्रह्म का कोई रूप, रंग, रेखा, नाम, विशेषताएं और इच्छाएं नहीं होती। अर्थात् वह गुणों से रहित माना जाता है। निर्गुण में ईश्वर को अनेक नामों का सम्बोधन प्राप्त नहीं होता। अपितु यहां तो परमात्मा अपने असली ज्योति-स्वरूप में होता है। निर्गुण में बिन सूरजों; इलाही जोत की चमक होती है। अर्थात् आद्-अन्त सर्व ब्रह्मांड में उसी का प्रकाश ही प्रकाश होता है; जिसके द्वारा कुदरत के सब कार्य चलते हैं। हम उस कुदरत के खेल नजारे देख सकते हैं।

निगुर्ण में उस परमात्मा की शान होती है; और सर्गुण में उसका दीवान लगता है।

तात्पर्य है कि जहां सर्गुण में तरह-तरह के रंगारंग मनमोहक लुभावने नजारे होते हैं, वहीं निर्गुण में नितांत एकांत होता है।

> **अफुर सुरत; संकल्प-विकल्प को छोड़कर, एक अवस्था में स्थिर बने रह, निर्गुण के एकांतमय वातावरण में; शांतिपूर्वक विचरती हुए निश्चल व आनंदमय बनी रहती है।**

इस प्रकार समभाव-समदृष्टि की युक्ति में प्रवीण सजन के लिए, निर्गुण-सर्गुण एक समान होता है। यानि वह जगत में विचरता हुआ भी, निर्लेप अकर्त्ता रूप में बना रहता है। संतुष्ट व अभय होने के कारण, उसे निर्गुण का एकांत खलता नहीं।

इसलिए उसकी अन्दरूनी और बैहरूनी वृत्ति में रैहणी-बैहणी कमाल होती है।

वह अपने मन-मन्दिर में, सर्वव्यापक भगवान को ही अनुभव करता है।

जो परमात्मा एक है, यानि जो लोग सर्वव्यापक भगवान के प्रति मान्यता व श्रद्धा रखते हैं; उन्हें किसी की आराधना नहीं करनी पड़ती। वे केवल समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अपनाते हुए, भक्ति द्वारा उच्च बुद्धि, उच्च ख्याल होने व भक्ति प्रबल व शक्ति, ताकतवर होने से पूर्णत: बलवान हो जाते हैं। फिर उन्हें किसी अन्य शक्ति को साथ रखने की आवश्यकता नहीं रहती; अपितु अफुर अवस्था होने के कारण शक्ति, दरबान हो जाती है। इस प्रकार वह जीव; कर्त्ता-अकर्त्ता नाम कहाता है और 'ये' शब्द पर परिपक्व हो इलाही श्रृंगार पहन प्रकाश में प्रकाश हो जाता है; यानि 'ब्रह्म-स्वरूप है,

> **वह अपने आप को पहचान; निर्वाण पद अर्थात् शून्यता, पूर्णता व मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार उसका तीनों तापों का टैम्प्रेचर - जो घटता बढ़ता रहता है; वह समाप्त हो जाता है।** ❑

करुणा है; तो धर्म है।

—मां श्रीमती अमृतानन्दमयी

सच्चे धर्म की भाषा मनुष्य के प्रति प्रेम, करुणा और सद्भावना से परिपूर्ण होती है। आज के मनुष्य ने यह सब भूला दिया है। यह तो मानना पड़ेगा कि संसार की सभी समस्याओं की जड़, करुणा एवं प्रेम का कम हो जाना है। समस्याएं कैसी भी हों, व्यक्तिगत या राष्ट्रीय स्तर की, उनमें जो अव्यवस्था एवं मारधाड़ दिखाई पड़ती है, उसका कारण यही है कि हम अपने दैनिक जीवन में धर्म को सही स्थान देने में असमर्थ रह गए है, जबकि धर्म को हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन जाना चाहिए। आज धर्म के पुनर्जागरण की आवश्यकता है। निश्चय ही धर्म को नए जीवन एवं प्राणशक्ति की जरूरत है, तभी हमारे हृदय में प्रेम और करुणा का आविर्भाव होगा।

> **प्रेम और करुणा से ही अंधकार मिटेगा और संसार में प्रकाश एवं नए जीवन का संचार होगा।**

जब प्रेम, दिव्यता का रूप पा लेता है तो हृदय करुणा से परिपूर्ण हो जाता है।

प्रेम, अंतरतम का भाव है और करुणा उसकी अभिव्यक्ति है।

करुणा, किसी दुखी व्यक्ति के प्रति आपकी आंतरिक संवेदनशीलता को ही व्यक्त करती है। प्रेम में आज एकरूपता दिखाई नहीं देती है। सब अपने परिवार से प्रेम करते हैं, किंतु अपने पड़ोसी से नहीं। जैसा प्रेम अपने माता-पिता से करते हैं वैसा अन्य किसी के माता-पिता से नहीं। अपने धर्म से सभी लोग प्रेम करते हैं, परन्तु वे अन्य धर्मों से प्रेम नहीं करते। दूसरे धर्मावलंबियों से सरेआम विद्वेष किया जाता है और अपने धर्मावलंबियों से प्रेम किया जाता है। अपने देश से तो सभी प्रेम करते हैं और करना भी चाहिए, परंतु दूसरे देशों से हम प्रेम नहीं करते? अन्य देशवासियों के प्रति आपके हृदय में वैरभाव हो सकता है। अत: हम यह कह सकते हैं कि यह प्रेम सच्चा नहीं हैं, यह सीमित प्रेम है।

धर्म का लक्ष्य है-सीमित प्रेम को दिव्य प्रेम में तबदील कर देना।

प्रेम की पूर्णता में ही करुणा का सुंदर तथा सुगंधयुक्त पुष्प खिलता है। जब अभिमान, भय एवं ऊच-नीच की भावनाओं का लोप हो जाता है, तब आप केवल प्रेम ही करते हैं। आप बदले में कुछ पाने की आकांक्षा नहीं करते, सिर्फ देते हैं। जो भी इस 'प्रेम' सरिता के किनारे आता है, वह उसमें डुबकियां लगाएगा ही, चाहे वह स्वस्थ स्त्री-पुरुष हो या अस्वस्थ, अमीर हो या गरीब।

इस प्रेम सरिता में कोई कितनी भी डुबकियां लगा ले, इससे किसी पर कोई फर्क पड़ने वाला नहीं। यह सरिता तो केवल बहती है। उसका काम ही है बहना।

इसी तरह जब व्यक्ति के अंदर 'प्रेम' उमड़ता है तो उसके हर शब्द एवं कर्म में उसकी अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

यह उमड़ता हुआ प्रेम ही करुणा है, जिसे हम धर्म कहते हैं, उसका लक्ष्य यही है।

करुणा से संपूरित व्यक्ति के बारे में ही यह कहा जाता है कि इसने धर्म के मूल तत्वों को जान लिया है। प्रेम और करुणा से ओतप्रोत व्यक्ति, दूसरों के दोषों को नहीं देखता। वह दूसरों में कमियां नहीं देखता। वह अच्छे-बुरे लोगों में भेद नहीं करता। वह देश तथा धर्म के बीच अपने और पराये का अंतर नहीं करता। उसमें

अहं भाव नहीं होता, इसलिए वह भयरहित, वासनाशून्य एवं उद्वेगहीन रहता है। वह दूसरों के अपराध क्षमा कर देता है और इसके बाद सब भूल जाता है।

करुणा एक ऐसे गलियारे की तरह है, जिसमें से व्यक्ति का आवागमन कभी बंद नहीं होता। वहां कोई ठहरता नहीं है, क्योंकि जहां सच्चा प्रेम होता है, जहां सच्ची करुणा होती है, वहां आसक्ति का भाव होता ही नहीं है। करूणा अपनी परिपूर्णता में व्यक्त किया गया प्रेम ही तो है।

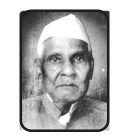

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-79 : करने से संसार है, न करने से सार।
यह संसार असार है, ब्रह्म सार का सार॥

मानव जीवन में दो तरह की शक्तियां काम करती हैं। एक करने की शक्ति, जो बुद्धि के नियंत्रण में क्रियाओं और अन्य खण्ड शक्तियों की मदद से काम करती है। इससे बाह्य-जगत की द्वैत क्षेत्र की उपलब्धियां प्राप्त होती हैं, जो सीमित होती हैं और अन्त में दुखद हो जाती हैं।

दूसरी होने की शक्ति है, जिसे ब्रह्म की शक्ति या आत्मा की शक्ति कहते हैं। यह मनुष्य की बुद्धि का व्यापार निष्क्रिय हो जाने पर क्रियाशील होती है।

असल में वह तो सदैव अपने स्वभाव से क्रियाशील रहती है, लेकिन बुद्धि के सक्रिय रहने पर उसकी क्रियाशीलता एक तरह से बंद रहती है, और बुद्धि की निष्क्रियता में ही उसकी क्रियाशीलता का प्रभाव प्रकट होता है।

यह अखण्ड होती है और जीवन के सारे सुख इसी से और इसी आधार पर होते हैं।

अत: जीवन में सार या महत्वपूर्ण यही है, जो न करने से, शान्त हो जाने से, पूर्ण और गहरे विश्राम (Relax) से अथवा ध्यान से प्राप्त होती है।

दोहा-80 : असत् ज्ञान है बुद्धि का, कण-कण में भगवान।
अनुभव तल पर जान लें, तभी होय कल्याण॥

परमात्मा प्रकृति से पार और कण-कण में समान रूप से विद्यमान है। परन्तु प्रकृति के पार जाकर परमात्मा से सम्पर्क करना बहुत सरल है। लेकिन बाह्य जगत के कण-कण में विराजमान परमात्मा से सम्पर्क करना अति कठिन है। उस स्तर पर उसे जानने के लिये चेतना का काफी विकसित होना आवश्यक है, जो ध्यान द्वारा होता है। बाह्य जगत के कण-कण में परमात्मा विराजमान है, ऐसा मान लेने से कुछ लाभ नहीं होता। क्योंकि बुद्धि ऐसा मानती है, वह वहां है इसका अनुभव नहीं होता इसलिये उसे मानने वाले को सदैव सतर्क रहना पड़ता है, जो संभव नहीं है।

जो चीज जानने के बाद मानी जाती है, उसी पर विश्वास होता है और जानने के बाद उस पर जो विश्वास होता है वही अनुभव कहलाता है। अनुभव के आधार पर जो क्रिया की जाती है, उसी का महत्व है, वही सत्य है और तभी कल्याण होता है।

दोहा-81 : सुख-दुख बीते का नहीं, भावी भय से मुक्त।
वर्तमान की जाग से, जगे शक्तियों सुप्त॥

इस दोहे में जीने की कला की एक बहुत महत्वपूर्ण अवस्था का वर्णन किया गया है। सभी सिद्ध इस कला में स्वभावत: दक्ष होते हैं। यह कला है वर्तमान में जीने की कला। जो व्यक्ति धीरे-धीरे आत्मशक्ति से पूर्ण होने लगता है, उसके मन पर से भूतकाल के वर्षों के प्रभाव, जो वर्तमान में सुख-दुख के रूप में अनुभव होते हैं, मिटने लगते हैं और आत्म-शक्ति से युक्त बाह्य जीवन के अनुभव उसे भविष्य की आशंका से भी मुक्त करने लगते हैं।

अत: वह स्वाभाविक रूप से वर्तमान में ही जीने लगता है।

न बीते हुए का सुख-दुख है और न भविष्य का कोई भय। इस अवस्था में जहां पुराने संस्कार बहुत तेजी से निकलने लगते हैं, वहीं नये संस्कारों के बनने की प्रक्रिया भी बंद हो जाती है; और समय पाकर मनुष्य संस्कारों से सर्वांश में मुक्त हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को ही जीवनमुक्त कहते हैं। मनुष्य के विकास की यह उच्च अवस्था मनुष्य के अन्दर छिपी अनन्त स्तर तक उत्थान करने की शक्तियों के रूप में प्रकट होने लगती है। ❑

नोट : 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 50/- (बीस) रुपये मनी- आर्डर अथवा कैश : अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

–Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001
Mobile : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर, नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार में पारिवारिक ध्यान सत्संग सायं 4 बजे से सायं 6 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

–सुरेश कुमार गुप्ता
866, सेक्टर 3, रोहतक-124001
E-mail : sureshgupta1936@gmail.com

PRINTED MATTER